THE LIGHT IN THE WINDOW



भाग दो

दहलीज़ 2

खिड़की में रोशनी

अपने जीवन के अधिकांश हिस्से में मैं मानता रहा कि किसी इंसान का मूल्य इस बात से नापा जाता है कि वह क्या हासिल कर पाया।

यह एक तर्कसंगत विश्वास था।

दुनिया जैसे जान-बूझकर इसकी पुष्टि करने के लिए बनी लगती है।

हमसे नतीजे माँगे जाते हैं।

आँकड़े।

लक्ष्य।

प्रदर्शन।

मील के पत्थर।

हर व्यवस्था के अपने संकेतक होते हैं।

हर संगठन की अपनी रैंकिंग होती है।

हर युग सफलता को नापने का एक अलग तरीक़ा ईजाद करता है।

और लगभग हमेशा यह पैमाना उस पर केंद्रित होता है जो दिखता है।

शायद ही कभी उस पर जो बचा रहता है।

पर जैसे-जैसे साल बीते, मैंने एक अनोखी बात पर ध्यान देना शुरू किया।

जिन लोगों को मैं सबसे ज़्यादा याद रखता था, वे लगभग कभी उन लोगों से मेल नहीं खाते थे जिन्होंने सबसे प्रभावशाली नतीजे हासिल किए थे।

मुझे दूसरे लोग याद थे।

वे जो पास रहे थे।

वे जिन्होंने सुना था।

वे जिन्होंने समय निकाला था।

वे जो उपस्थित रहे थे।

मानवीय स्मृति उतनी आसानी से प्रभावित नहीं होती जितनी लगती है।

दशकों बाद वह सिर्फ़ यह याद नहीं रखती कि तुमने क्या किया।

वह यह याद रखती है कि तुमने दूसरों को कैसा महसूस कराया।

और इस खोज ने बहुत कुछ बदल दिया।

यह धीरे-धीरे हुआ।

जैसे सभी सच्चे रूपांतरण होते हैं।

कोई अचानक रहस्योद्घाटन नहीं हुआ।

सैकड़ों घटनाएँ हुईं।

छोटी।

लगभग अदृश्य।

एक दोस्त जो तब आ जाता है जब तुमने उसे बुलाया भी नहीं।

एक व्यक्ति जो किसी कठिन क्षण में तुम्हारे पास बैठा रहता है।

परिवार का कोई सदस्य जो समस्या सुलझा नहीं सकता, फिर भी बोझ बाँटना चुनता है।

इन सभी मामलों में कुछ ऐसा होता है जिसे आँकड़े नहीं नाप सकते।

उपस्थिति ताक़त पैदा करती है।

इसलिए नहीं कि वह दर्द मिटा देती है।

इसलिए कि वह अकेलेपन को संपूर्ण बनने से रोकती है।

बहुत से लोग सोचते हैं कि मदद करने का मतलब समाधान खोजना है।

मुझे अब इसका इतना यक़ीन नहीं।

जिन लोगों ने सचमुच मेरी मदद की, उनके पास हमेशा जवाब नहीं होते थे।

अक्सर उनके पास बस रुके रहने की इच्छा होती थी।

और यह काफ़ी था।

जब हम युवा होते हैं, हम मानते हैं कि मूल्य कर्म में बसता है।

समय के साथ हम पाते हैं कि मूल्य बहुत बार टिके रहने में बसता है।

वहाँ होना।

भाग न जाना।

ध्यान न भटकने देना।

किसी और को न सौंप देना।

ग़ायब न हो जाना।

उपस्थित रहना।

यह कम लगता है।

यह बिल्कुल भी कम नहीं है।

हम एक ऐसे समाज में रहते हैं जो जुड़ावों से भरा है और अक्सर उपस्थिति में ग़रीब।

हम कुछ सेकंडों में किसी तक भी पहुँच सकते हैं।

हम धरती के किसी भी कोने में संदेश भेज सकते हैं।

हम लगातार संवाद कर सकते हैं।

फिर भी बहुत से लोग पहले से कहीं ज़्यादा अकेले महसूस करते हैं।

शायद इसलिए कि उपस्थिति कोई तकनीकी मामला नहीं है।

यह एक मानवीय मामला है।

उपस्थिति ध्यान माँगती है।

और ध्यान हमारे समय के सबसे दुर्लभ संसाधनों में से एक बन गया है।

मुझे अपने जीवन के कुछ ऐसे दौर याद हैं जिनमें मैं सलाह नहीं खोज रहा था।

मैं रणनीतियाँ नहीं खोज रहा था।

मैं जवाब नहीं खोज रहा था।

मैं साथ खोज रहा था।

कोई ऐसा जो रास्ते का एक हिस्सा साथ चलने को तैयार हो।

कोई ऐसा जो यह कहने को तैयार हो:

“मुझे नहीं पता यह कैसे ख़त्म होगा, पर तुम इसे अकेले पार नहीं करोगे।”

ये वाक्य घटनाओं को नहीं बदलते।

ये हमें बदलते हैं।

और यह कहीं ज़्यादा महत्वपूर्ण है।

सालों तक मैंने ऐसे माहौलों में काम किया जिनमें हर चीज़ नापी जाती थी।

प्रदर्शन।

बाज़ार हिस्सेदारी।

विकास।

उत्पादकता।

फिर भी मुझे मिली सबसे क़ीमती चीज़ों में से कुछ किसी भी रिपोर्ट में दिखाई नहीं देती थीं।

भरोसा।

वफ़ादारी।

सुनना।

निकटता।

इनमें से कोई भी चीज़ आसानी से किसी तालिका में नहीं समाती।

फिर भी ये मानव जीवन के बड़े हिस्से को थामे रखती हैं।

उपस्थिति भी इसी तरह काम करती है।

जब वह होती है, तो अदृश्य होती है।

जब वह नहीं होती, तो साफ़ दिखती है।

हवा की तरह।

सेहत की तरह।

कुछ लगावों की तरह।

हम उनका मूल्य सबसे ज़्यादा उस क्षण पहचानते हैं जब वे उपलब्ध नहीं रहते।

उम्र के साथ मैंने एक ऐसा सबक़ सीखा जो किसी किताब ने मुझे नहीं सिखाया था।

कई समस्याएँ तुरंत सुलझाए जाने की माँग नहीं करतीं।

वे पार किए जाने की माँग करती हैं।

और जब किसी समस्या को पार करना होता है, उपस्थिति योग्यता से ज़्यादा मायने रखती है।

यह एक अजीब वाक्य लग सकता है।

पर जिसने भी कोई बड़ी परीक्षा झेली है, वह इसे तुरंत समझ जाता है।

कोई व्याख्या किसी हानि को नहीं मिटाती।

कोई रणनीति किसी बीमारी को नहीं मिटाती।

कोई सिद्धांत अनुपस्थिति को नहीं मिटाता।

कुछ हालात ऐसे होते हैं जिनमें इंसान को सुधारे जाने की ज़रूरत नहीं होती।

उसे किसी के साथ की ज़रूरत होती है।

इस खोज ने दूसरों से जुड़ने का मेरा तरीक़ा भी बदल दिया।

मैंने हर चीज़ का समाधान खोजने के लिए ख़ुद को बाध्य महसूस करना छोड़ दिया।

मैंने मौन को विफलता मानना छोड़ दिया।

मैंने यह मानना छोड़ दिया कि मेरा मूल्य दुनिया को ठीक करने की मेरी क्षमता पर निर्भर है।

इसके बजाय मैंने एक अलग गुण विकसित करना शुरू किया।

उपलब्धता।

उपलब्ध रहना।

परिवार के लिए।

दोस्तों के लिए।

नाज़ुक लोगों के लिए।

हर उस व्यक्ति के लिए जो किसी कठिनाई से गुज़र रहा था।

हर उस व्यक्ति के लिए जिसे सुने जाने की ज़रूरत थी।

यह कम दिखावटी कौशल है।

पर अनंत गुना ज़्यादा उपयोगी।

पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो मुझे एहसास होता है कि मेरे अस्तित्व के सबसे सार्थक क्षणों में अक्सर एक बात समान रही है।

कोई उपस्थित था।

कभी-कभी वह मैं था।

कभी-कभी दूसरे।

पर एक उपस्थिति थी।

एक मौन उपस्थिति।

संयमित।

दख़ल न देने वाली।

एक उपस्थिति जो कुछ नहीं माँगती थी।

जो किसी मान्यता की अपेक्षा नहीं करती थी।

जो तालियाँ नहीं खोजती थी।

वह बस मौजूद थी।

रात में किसी खिड़की में जलती रोशनी की तरह।

शायद परिपक्वता इसमें भी है।

यह समझना कि हमें हर दिन असाधारण होने की ज़रूरत नहीं है।

हमें दुनिया को बचाना नहीं है।

हमें सबको मनाना नहीं है।

हमें हर लड़ाई जीतनी नहीं है।

कभी-कभी हमें बस वहाँ होना होता है।

सचमुच।

अपने पूरे ध्यान के साथ।

अपनी पूरी इंसानियत के साथ।

अपनी पूरी अपूर्णता के साथ।

क्योंकि लोग कई चीज़ें भूल जाते हैं।

वे शब्द भूल जाते हैं।

वे तारीख़ें भूल जाते हैं।

वे महत्वपूर्ण घटनाएँ तक भूल जाते हैं।

पर वे शायद ही कभी भूलते हैं कि ज़रूरी क्षण में उनके साथ कौन रहा।

आख़िर में, काम, यात्राओं, सफलताओं, हानियों, रूपांतरणों और बीते समय के बाद, एक आश्चर्यजनक रूप से सरल सच बचता है।

हम हमेशा वह नहीं बदल सकते जो होता है।

हम हमेशा चंगा नहीं कर सकते।

हम हमेशा बचा नहीं सकते।

हम हमेशा समझ नहीं सकते।

पर हम वहाँ हो सकते हैं।

और जितना हम सोचते हैं उससे कहीं अधिक बार, उपस्थिति ही काफ़ी है।